आचार्य रा. हारीत,
'जयदुर्ग', जयपुर.

प्रथमावृत्ति.

मुद्रक
न्यू राजस्थान प्रेस,
७३, मुक्तारामबाबू स्ट्रीट,
कलकत्ता.

श्रीमती रानी साहिबा के पूज्य पिता
स्वर्गीय रावत साहिब विजयसिंहजी, देवगढ़.

समर्पण

श्रीमती रानी साहिबा के पूज्य पितृदेव
की पवित्र स्मृति को
सादर समर्पित
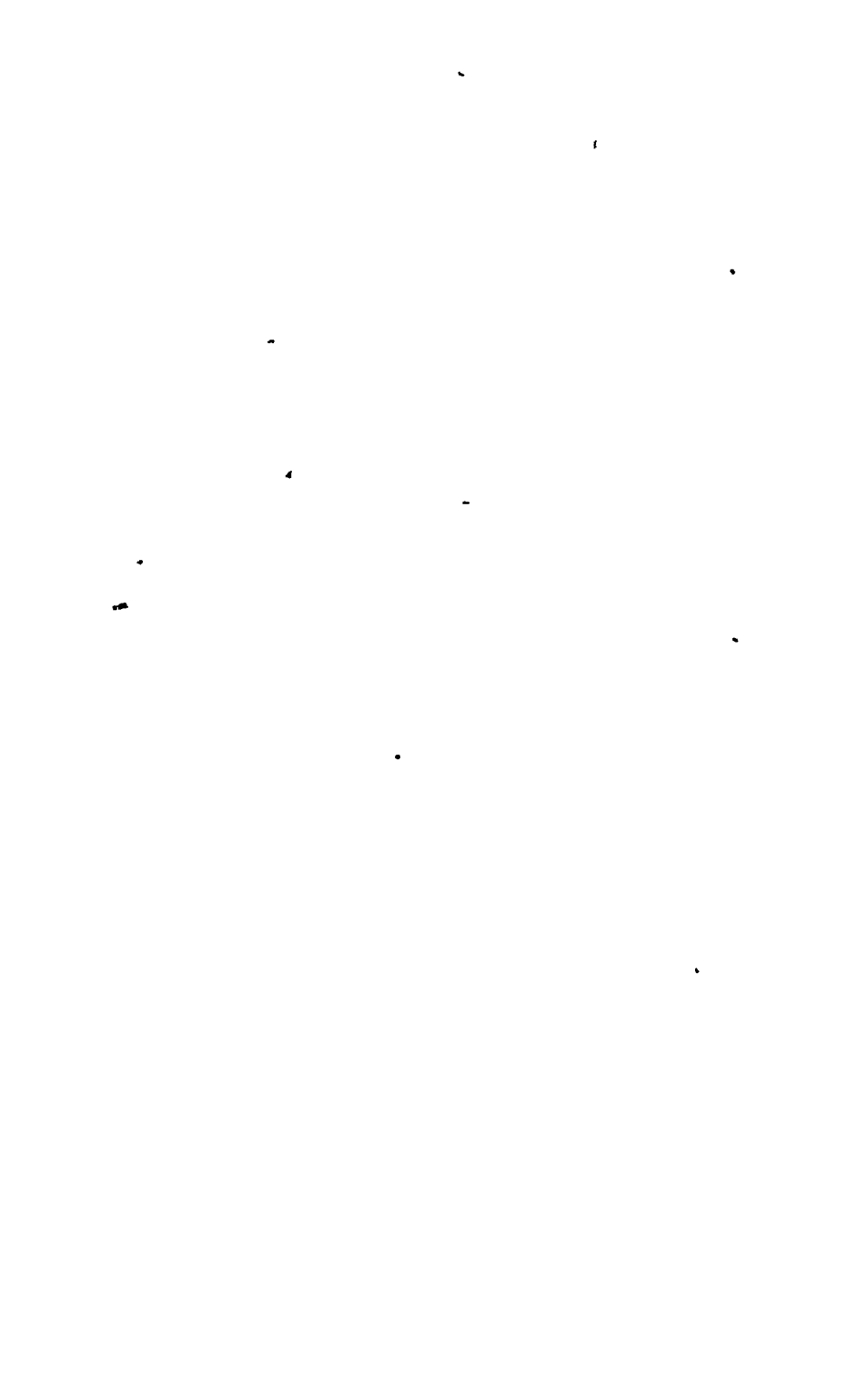
आमुख

श्रीमती रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत के गद्यगीत पत्र-पत्रिकाओं मे प्रायः प्रकाशित होते रहते है इसलिए हिन्दी के पाठक इनकी काव्य-प्रतिभा से अच्छी तरह परिचित हैं। राजस्थानी संस्कृति और वहाँ की ओजस्वी चिंतन-शैली को आपकी लेखिनी भावुक शब्दरूप देने में अच्छी सफल हुई है। इनकी अपनी स्वतंत्र शैली है। आपकी कृतियों में राजस्थानी नारी का ओज अपनी मौलिक विशेषता रखता है। थोड़े से शब्दों द्वारा अगाध भाव-स्रोत बहा देने में आप दक्ष हैं। इनका शब्द-चयन अपने ही ढंग का होता है। गद्यगीतों की तरह आपकी कहानियाँ और कविताएँ भी बड़ी

सरस एवं शक्तिशाली होती हैं। हिन्दी की प्रमुख लेखिकाओं में इनकी गणना है। आपकी रचनाओं के सम्बन्ध में हमारे यहाँ से एक स्वतंत्र विवेचनात्मक पुस्तक प्रकाशित होगी।

आपका जन्म विख्यात वीर राव चूंडा के वंश में देवगढ़ में सं० १९७३ आषाढ़ कृष्णा ६ को हुआ। आपके पूज्य पिता स्व० रावत साहिब विजयसिंहजी बड़े ही विद्याप्रेमी और काव्यानुरागी थे। कवियों और कलाकारों को अपनी वंश-परम्परा के अनुसार वे सदा सम्मानित किया करते थे। राजस्थानी गौरव और राष्ट्रीयता के लिए उनके हृदय में महत्त्वपूर्ण स्थान था। स्व० महामना पं० मदनमोहनजी मालवीय को काशी विश्व-विद्यालय के लिए उन्होंने प्रशंसनीय सहयोग दिया था। आपकी माजी साहिबा नन्दकंवरजी बड़ी उदार हृदयवाली महिला हैं। काव्य और साहित्य के प्रति उनका प्रशंसनीय अनुराग है। आपके भाई वर्तमान देवगढ रावत साहिब श्री संग्रामसिंहजी भी विद्यानुरागी और साहित्यप्रेमी हैं। रानी साहिबा का ननिहाल देलवाड़ा में है। पुरातन कलाकृतियों के नाते देलवाडा अपना विशेष महत्त्व रखता है। यहाँ के भव्य जैन-मन्दिर दर्शनीय हैं। देलवाड़ा राजराणा साहिब श्री खुमानसिंहजी के पास अमूल्य एवं अनुपम चित्रों का संग्रह है। आप स्वतंत्र विचारों के सुलझे हुए सरदार हैं।

अपनी होनहार सुपुत्री के लिए योग्य माता-पिता ने बचपन से ही शिक्षा का समुचित प्रबन्ध किया। श्री देवीचरणसिंहजी को अध्यापन कार्य के लिए नियुक्त किया गया। बाल्यावस्था से ही राजस्थानी वीरकाव्य, संस्कृति, साहित्य और कला की तरफ आपका अच्छा झुकाव था। अपने पूर्वजों के वीर-कृत्य पढ़ते २ आपका हृदय उल्लास से भर जाता था। बाल्य-

काल से पाला हुआ प्रान्तीय और राष्ट्रीय गौरव यथा समय काव्यसरिता बन बह निकला।

लालन-पालन और शिक्षा-दीक्षा के बाद ईश्वर की कृपा से आपको अपने योग्य ही पति मिले। आपके पतिदेव रावतसर रावत साहिब श्री तेजसिंहजी राजस्थानी, हिन्दी और अंग्रेजी के अच्छे पारखी विद्वान् हैं। शांत और गंभीर स्वभाव के साथ अध्ययनशीलता आपका विशेष गुण है। ये मेयो कॉलेज के स्नातक हैं पर वहाँ के अवांछनीय पश्चिमी वातावरण का इन पर बिलकुल प्रभाव नहीं है। मिलनेवाला इनकी विद्वत्ता और उदारता से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। योग्य पति के साहचर्य में रानी साहिबा की काव्य-प्रतिभा को अच्छी प्रगति मिली। राजस्थानी काव्य और गाथाओं का आपके यहाँ अच्छा संग्रह है। डिंगल पर इस दम्पती का असाधारण अधिकार है।

आपके दो राजकुमार और तीन राजकुमारियाँ हैं। शिशु-पालन और और शिक्षा की तरफ पति-पत्नी दोनों ही बड़े सचेष्ट रहते हैं। आपके बच्चों के परिष्कृत व्यवहार और संभाषण से बड़ी खुशी होती है। इस दिशा में राजस्थानी परिवार और विशेषतया राजपूत परिवार आपसे बहुत कुछ सीख सकते हैं।

इस परिवार की साहित्य-साधना का हम हृदय से स्वागत करते हैं। श्रीमती रानी साहिबा की यह महत्त्वपूर्ण रचना काव्य मर्मज्ञों के सामने रखते हुए हमें बड़ी प्रसन्नता होती है।

—सम्पादक

भूमिका

हम लोग जब राजस्थान का स्मरण करते हैं तब हमारे चित्तपट पर न केवल भारत के उस पुण्यक्षेत्र के पुण्यश्लोक शूरवीरों के चित्र प्रतिफलित होते हैं पर उनके साथ ही साथ वहाँ की वीरांगनाओं के पुण्य चरित की शुभ्र और शुचि ज्योतिर्लेखा हमारे चित्तपट को एक महिमाबोध से भर देती है। गिलादित्य, बप्पा रावल, पृथ्वीराज चौहान, महाराणा समरसिंह, वीर हम्मीर, राव चूंडा, राणा भीमसिंह, राणा सांगा, राणा कुंभा, महाराणा प्रताप, बादल, पत्ता, वीर दुर्गादास राठौड़, महाराणा राजसिंह आदि महान् देशप्रेमियों की अमर कहानी के साथ रानी कमलावती, रानी पुष्पवती, रानी संयोगिता, कर्मदेवी, रानी पद्मिनी, धात्री पन्ना, ताराबाई, राजकुमारी कृष्णा आदि की पुण्य कथा लहराती है। सिक्ख दशम पातशाह गुरु गोविन्दसिंहजी के सम्बन्ध में एक कहानी प्रसिद्ध है कि जब उन्होंने सिक्खों की धर्मदीक्षा के लिए 'पाहुल' रीति का प्रवर्तन किया था तब एक पात्र में पानी रखकर चंडिका नैना देवी से प्राप्त हुआ खड्ग उन्होंने उसमें डाल दिया। दैव शस्त्र के स्पर्श से उस पानी में ऐसी शक्ति आ गई कि दो छोटी चिड़ियों को वह पानी पिलाया गया और उस पानी के तेज के कारण चिड़ियाँ आपस में लड़ती लड़ती मर गईं। इतने में गुरुजी की एक पत्नी कुछ मिठाई लेकर वहाँ आईं। उन्हें देख कर गुरुजी बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने पाहुल के पानी के साथ उस मिठाई को मिला दिया और कहा कि अब सिक्खों के चरित्र में ओजगुण के साथ मिठास भी आवेगी। यदि पानी में यह मिठाई नहीं दी जाती तो सिक्ख चरित्र में केवल शक्ति या दृढ़ता ही रहती, माधुर्य या कोमलता नहीं रहती। राजपूत चरित्र में भी इस कदर शक्ति के साथ कोमलता आई है। राजपूत चरित्र में एक तरफ जैसी लोकोत्तर शूरता की कमी नहीं है, दूसरी तरफ वैसी कोमलता भी आई है। 'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि' यह कहावत राजस्थान के

हृदय के सम्बन्ध में भी प्रयोज्य है। कोमलता और उसके साथ भावुकता का प्रकाश राजपूत जीवन में ज्यादातर कविता के रूपमें ही हुआ है। शूरता और कविता मानों राजपूत वीर चरित्र के दो पक्ष हैं। राजपूताने के अनुभवी कवियों में सबसे प्रधान एक महीयसी महिला हैं, गिरिधर गोपाल के प्रेम के मधुर और उज्ज्वल रस से भरी हुई जिनकी कविता ने भारत भारती की मुखश्री को और भी उज्ज्वल कर दिया है; वह है मीरां बाई।

राजपूत वीर नारी अपने वीर पति की सच्ची सहधर्मिणी थी। कायरपन वह सह नहीं सकती थी। उसकी उत्तेजक वाणी के आधार पर डिंगल और पिंगल के कितने ही गुणग्राही भाट, चारण और अन्य कवियों ने राजस्थानी साहित्य के गौरव स्वरूप कितने पद और दोहे बनाये हैं, जो लोगों की जिह्वा पर आज भी—'नरी नृत्यंति'—होठों पर आज भी घूमते फिरते हैं। अपनी ईश्वरानुभूति के अंग के प्रकाश द्वारा मीरा बाई ने भारतवर्ष की आध्यात्मिकता का एक नया साहित्यिक प्रकाश किया। वेद की ऋषिकाएं, उपनिषदों की ब्रह्मवादिनी नारियाँ, दक्षिण भारत के तमिलनाडु का भक्त कवयित्री श्री अंडाल् और काश्मीर की शिवभक्त नारी कवि लल्लदेवी इन सब की समश्रेणिका थी मीरां बाई। राजस्थान के पुरुष तथा नारियों की वीरता पर मीरां बाई ने आध्यात्मिक अनुभूति तथा रसानुभूति की दिव्य ज्योति डाली।

इस आध्यात्मिक अनुभूति तथा रसानुभूनि का उत्स, मरुमय होते हुए भी राजस्थान की पवित्र भूमि में अभीतक सूख नहीं गया है। मीरां की जाति में—राजस्थान की मातृजाति में यह अब तक दिखाई देता है। आधुनिक भारत के हिन्दी साहित्य में राजपूत वंशों की महिला कवियों की देन कुछ कम नहीं है। प्रस्तुत गद्य-कवितावली से इसका और एक प्रमाण मिलेगा। सौभाग्यवती श्रीमती रानी लक्ष्मीकुमारी चूँडावत का नाम हिन्दी पाठक-समाज में अपरिचित नहीं है। आप बीकानेर राज्यान्तर्गत रावतसर के रावत साहिब श्रीमान् तेजसिंहजी की धर्मपत्नी हैं। आपकी काव्य-सर्जना,

नव्य हिन्दी की काव्य-सरस्वती के चरणों के कलस्वन नूपुर बनी है। आपकी अनुभवमय पूत होम-वेदी की अग्नि की कुछ चिनगारियाँ, मनोहर छन्दोमय गद्य-कविता के रूप में प्रस्तुत पुस्तक में स्थिर दामिनी सी चमकती हैं। इन कविताओं की विषय-वस्तु में जैसी विचित्रता है, इनकी दृष्टि-भंगी जैसी संस्कृति-पूत और सुकुमार है, इनकी अनुभूति वैसी अन्तर्मुखी है और भाषा भी वैसी कलामंडित और साथ ही साथ स्वभाव सुन्दर है। हिन्दी में धीरे-धीरे गद्य कविता की प्रतिष्ठा हो रही है। राय कृष्णदास, चतुरसेन शास्त्री, वियोगी हरि, भँवरमल सिंघी आदि कई सुलेखकों की कृतियों से हिन्दी साहित्य के इस अंग का लक्षणीय परिवर्धन हुआ है। श्रीमतीजी की रचना ने इस गौरव को और भी बढ़ाया है। मैं अपनी तरफ से कहता हूँ कि 'अन्तर्ध्वनि' की कवितायें मुझे नितान्त सुन्दर और हृद्य लगती हैं और मेरा विश्वास है कि सहृदय पाठक इन कविताओं की ओर आकृष्ट होंगे। संगीत-विद्या के पहुँचे हुए आचार्य कलावंत कवि तानसेन ने अपने एक पद में जैसा कहा है—

तानसेन अन्तर-बानी धुरुपद पुकार।

कवयित्री की 'अन्तर्ध्वनि' वैसे ही इन कविताओं में प्रतिध्वनित होती है। मैं श्रीमती रानी साहिबा को हार्दिक बधाई देता हूँ और मेरी आन्तरिक प्रार्थना है कि आप सौभाग्यवती और चिरजीविनी रह कर कविता का ऐसा सुन्दर मधुचक्र तैयार करें, जिसके सम्बन्ध में बंगाल के प्रमुख कवि 'मेघनाद वध' काव्य के रचयिता माइकेल मधुसूदन दत्त की उक्ति का अनुसरण करके हम सानन्द गर्व से कह सकें कि हिन्दी-संसार 'इससे सदा के लिये आनन्द के साथ काव्यामृत रस का आस्वादन करेगा।'

'हिन्दी' जन जाहे—
आनन्दे करिबे पान सुधा निरवधि।

कलकत्ता विश्वविद्यालय,
वैशाखी संक्रान्ति, वि. सं. २००४

सुनीतिकुमार चट्टोपाध्याय

अन्तर्ध्वनि
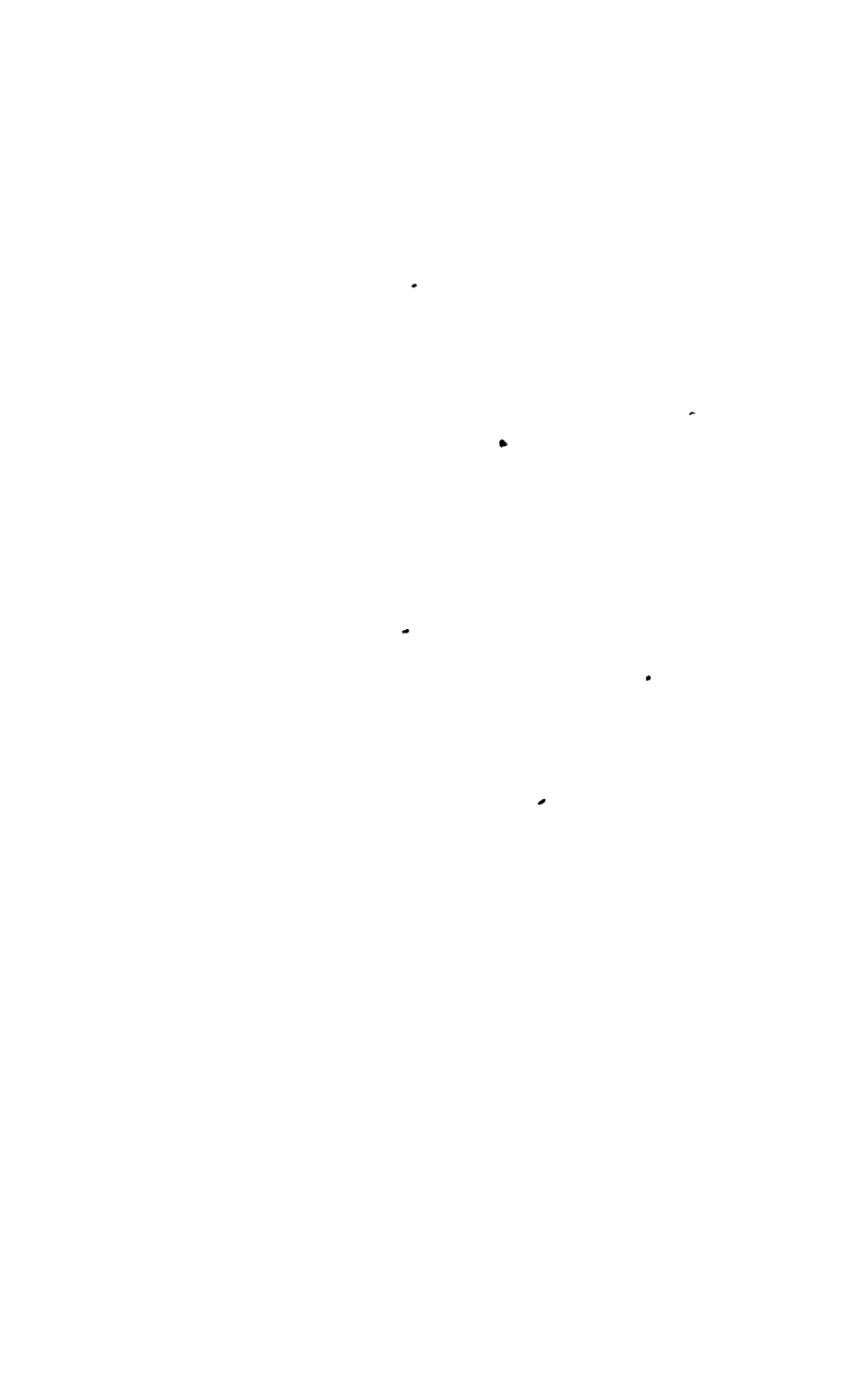
अन्तर्ध्वनि

ज्योतिर्मय,

तेरी ज्योति से ही सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र प्रकाशित हैं

फिर मैं क्यों तेरी पूजा में एक नन्हासा टिमटिमाता दीप जलाऊँ ?

कण कण तेरे प्रकाश से प्रकाशमय

महान् ज्योतिर्मय के मन्दिर में नन्हासा दीप जलाकर क्यों हास्यास्पद बनूँ ?

मैं तो ऋषि-पुत्रों की अमरवाणी में अपना स्वर मिलाकर यही पूजा-प्रार्थना करूँगी :

ज्योतिरसि ज्योतिर्मयि धेहि ।

अन्तर्ध्वनि

अणु अणु में तू विद्यमान है
इस ब्रह्माण्ड में कोई भी वस्तु ऐसी नहीं जो तेरे से रहित हो
सब जगह तू ही तू है
फिर भी तू निर्लिप्त है !
आज तक किसीने तुझे देखा नहीं ।
सब में समाने पर भी सबसे छिपा हुआ है ।
तेरे आदेश बिना कुछ भी नहीं हो सकता ।
एक पत्ती तक तो हिल नहीं सकती ।
तू सृष्टि को उत्पन्न करता है
तू ही संहार करता है
तू ही रक्षक है ।
प्रत्येक प्राणी मे प्रत्येक कार्य की प्रेरणा करनेवाला तू है
सृष्टि में पाप-पुण्य का स्रष्टा तू है
फिर भी तू निर्विकार है !!
माया तू है,
मोक्ष तू है,
सर्वस्व तू ही है और
तू कुछ भी नहीं है ।
तुम्हारी लीला अपरम्पार है ।
हम तुम्हें कैसे जानें लीलानिधे !

अन्तर्ध्वनि

ईश्वर ने किसी भी वस्तु को पूर्ण नहीं बनाया।

अपनी सर्वोत्तम कृतियों को भी निर्दोष नहीं रखा।

परिपूर्ण तो स्वयं वही है।

चन्द्रमा में कलंक, गुलाब में काँटा, भोग में रोग, धन में मदान्धता,

सुख में दुःख और संयोग में वियोग। पूर्णानन्द तो केवल उसी में है।

अन्तर्ध्वनि

चित्तौड़ दुर्ग,

तू खिन्न क्यों है ?

तेरे अन्तस्तल की पीड़ा हम जानते हैं।

तुझे अपनी सन्तानों पर क्षोभ है।

हमें कायर मत समझ।

जो जौहरज्वाला तूने जलाई थी वह आज भी तुम्हारे ही हृदय में नहीं हमारे हृदयों में भी जल रही है।

आज भी हमारे शत्रु इन ज्योतिः-स्फुलिंगों से भयभीत हैं।

जरा अनुकूल वायु चलने दो।

ये स्फुलिंग प्रचण्ड ज्वाला बन, धधक उठेंगे,

सारा देश जाज्वल्यमान हो जायेगा।

जो वीरनाद सदियों तक तेरे प्रांगण में गूँजता रहा

वह अब भी हमारे हृदयों में प्रतिध्वनित हो रहा है।

तेरे मस्तक को ऊँचा रखनेवाले वीर पूर्वजों का विशुद्ध रक्त हमारी नाड़ियों में दौड़ रहा है।

वीरगर्भा जननी की हम सन्तान हैं।

हमें कायर मत समझ।

तेरा उत्थान ही हमारा जीवन है।

अन्तर्ध्वनि

गोधूलि का समय था ।

वह सुन्दर समय जब कि गायों को गाँव की ओर मातृ-स्नेह खिंचे ला रहा था ।

हम घूमने गये थे ।

देखा,

जीर्ण चबूतरे के ऊपर लगे अनघड़ पत्थर के आगे एक मनुष्य दीपक जला रहा था ।

मेरे पाँव बरबस उस ओर बढ़ गये, मस्तक स्वतः झुक गया और ललाट चबूतरे की रज चूमने लगा ।

मेरे साथियों ने हँसी की,

"कितना अंधविश्वासी है,

राह चलते पत्थरों पर सिर टेकने लगेगा ।"

"यह पत्थर नहीं,

हमारे राजस्थान का कलेजा और प्यारे भारत का गौरव है ।

यह तेल से जलाया मिट्टी का दीप हमारी दुर्बलताओं का प्रतीक है ।

विश्व को प्रकाश देनेवाले देदीप्यमान वीर को हमारा दुर्बल दीप क्या प्रकाश देगा ?"

मित्रों ने पूछा,

"यह किसी का स्मारक है ?"

"रक्त से जलाये इस प्रकाश-स्तंभ को स्मारक मत कहो ।

मातृभूमि की रक्षा में यहां एक वीर ने अपने प्राणों की आहुति दी थी ।

अन्तर्ध्वनि

इसकी वीरगाथायें घर घर सुनाई जाती हैं। इसके वीरगीत हमारे राष्ट्रगीत हैं।

शत्रुओं ने भी इसके यश-गीत गाये हैं।

सर कट गया पर घण्टों जूझता रहा।

संसार इसके पराक्रम और बलिदान को सिर झुकाता है।

इसी पराक्रमी पुरुष के बलिदान-शोणित से जला यह आलोक-स्तंभ सालों से जल रहा है,

वीरों को बलिवेदी का मार्ग दिखाता हुआ और कायर कपूतों को कलंकित करता हुआ

यह ज्योतिर्मय जननी जन्मभूमि के वक्षःस्थल पर अनन्त काल तक जलता रहेगा।"

अन्तर्ध्वनि

मेरे आगे वीर भारत का अमर इतिहास खुला था।

पन्ना पन्ना कह रहा था हम राजस्थान के रक्त से रंगे हुये हैं।

तुम्हारे वीर पूर्वजों का रक्त ही इतिहास है।

उल्लास, उत्साह और उत्सुकता के साथ आत्माभिमान जाग उठा,

मेरा हृदय अपने ही रक्त के चमत्कार देख रहा है :

वीरागनाओं की वीरता,

जौहर की ज्वाला,

वीरों का पराक्रम,

तलवारों के वार, शोणित की धारा, घोड़ों की हिनहिनाहट और

हाथियों की चिंघाड़, रणक्षेत्र में अदम्य उत्साह और अनुपम आत्मोत्सर्ग,

सारी घटनायें आँखों के सामने सजीव हो उठीं।

हठात् अपने आप से प्रश्न किया,

"यदि ऐसी परिस्थिति मेरे सामने आई तो क्या करूँगी ?"

अन्तर्तम बोल उठा,

"ठीक वही जो वीर माताओं और वीर पूर्वजों ने किया था।"

बुद्धि ने तर्क किया,

"क्यों ?"

हृदय ने समाधान किया, "यही वीर धर्म है।"

बुद्धि ने अविश्वास से पूछा,

"यह कठोर धर्म कोमल नारि,

तू निभा सकेगी ?'

अन्तर्ध्वनि

वीर हृदय को चोट लगी। कहने लगा,
"पुरुषों में पराक्रम पैदा करनेवाली नारी ही है!
जो स्वयं मरना जानती है
वही पलने में वीरता के पाठ पढ़ा सकती है।"

अन्तर्ध्वनि

मेवाड़माता !

हमने सर्वस्व स्वाहा कर दिया ।

सब कुछ सहा ।

तेरी अनुपम अभ्यर्थना की,

साधारण पुष्पों से नहीं,

मस्तकों के पुष्पों से ।

शोणित से स्नान कराया ।

पंचतत्त्वों से बने कलेवरों की खाद डाल

मेदपाट मही को उर्वरा बनाया

जिससे तू वीर-प्रसूता कहलाई ।

तेरी ओर जिसने आँख उठाकर देखा

उसका संहार कर दिया ।

तेरे गौरव के लिये माँ !!

वीरांगनाओं ने पतंगों की तरह चिताओं में

अपने जीवन होम दिये ।

अपने हृदय के टुकडे लाड़लों को तुझ पर निछावर कर दिया,

आँखों में एक बूँद आँसू भी न आने दिया ।

पति के कटे हुये सिर को गोदी मे ले उत्सव मनाये ।

तू ही बता माँ !

सर्वस्व बलिवेदी पर चढा दिया

फिर भी.......... !!!

अन्तर्ध्वनि

चित्तौड़ दुर्ग के देवालय में सदियों से स्वतंत्रता देवी की आराधना होती रही।

स्वदेशाभिमान की भक्ति हृदय में भर वीर पुजारियों ने इस आराध्य देवी की गरिमाशाली पूजा की।

पूर्वजों के पवित्र ओज से स्नान किया।

केसरिया वस्त्र पहने।

सिंधु राग की बलिदानमयी स्वर-लहरी के साथ चमकते तीक्ष्ण शस्त्रों की कौंधसे आरती उतारी।

शोणित का अर्घ्य दिया।

भाल पर कीर्त्ति का उज्ज्वल तिलक लगाया।

वीरता के दीपक ने सुयश-ज्योति को दूर दूर फैला दिया।

नारियल की जगह अपने मस्तक चरणों में चढ़ा दिये।

यज्ञमें सहधर्मिणी को भी अपने कर्तव्य का पालन करना होता है। कुलवधुओं ने कर्पूर की अभूतपूर्व आरती सँजोई। जौहर की ज्वालामें अपनी कोमलकायाको कपूर की तरह जला डाला। सौरभ संसार के कोने कोने में व्याप्त हो गई जिससे आज तक संसार सुवासित हो रहा है।

अन्तर्ध्वनि

माँ मेवाड-भूमि ! तुझे कभी नहीं भूल सकते।

भूमि के किसी भी खण्ड पर क्यों न चले जायें, हम पर अधिकार तो तेरा ही है। तन-मन सर्वस्व तू ही है माँ ! तुझसे अलग हमारा कोई अस्तित्व नहीं।

तेरा वात्सल्य हमारे रोम रोम मे रम रहा है, जैसे पुष्प में गंध। तेरे ये ऊँचे ऊँचे विकट पहाड ही तो हमारे मस्तकों को ऊँचा उठाने में सहायक हुये हैं। तेरी मिट्टी का कण २ हमारे वीर पूर्वजों के रक्त मे रंजित है। तेरे ये मनोहर तालाब हमारे पूर्वजों के शोणित से आबाद हुये हैं।

हमारी देह में जो रक्त प्रवाहित है वह तेरा ही तो है। अपने हृदय का रक्त पिला तूने हमें बड़ा किया है। हमारा नाता अटूट है। रक्त का नाता टूट नहीं सकता। हमारा हृदय-बंधन रक्त-बंधन अमर है जननि !

काल का कुचक्र आज हमारे पक्ष मे नहीं है। भयंकर आग जल रही है पर भाप मे जल जाने पर भी पुष्प से तो इत्र बनकर ही निकलेगा जिसकी गन्ध और भी तीव्र होगी।

सतियों की साधना से प्राप्त यही सुगन्ध संसार को सुगंधित करेगी माँ !

अन्तर्ध्वनि

यदि मैं कोयल होती तो कू कू करती रंग राग में ही अपना जीवन व्यतीत कर देती ?

यदि मैं कोयल होती तो आम्रवृक्ष की डालियों पर न फुदक कर देश भर में गाँव-गाँव घूम कर अपने मादक स्वर से गाना गाती। कोयल की सरस शृंगारभरी कूक की जगह मेरे स्वरों में साधना और तपस्या की पुकार होती।

मेरे हृदय का ओजस्वी संगीत गाँव-गाँव में देश के कोने-कोने में गूंज उठता :

आजाद हो जाओ

अन्तर्ध्वनि

महाशक्ति,

हमारी आँखों से भ्रम और अज्ञान का पर्दा हटा दे।

अपने आपको परखने की हमें क्षमता प्रदान कर।

कल तक गुलाम कह कर जो शोषण किया जाता था वह अब आजाद कह कर किया जायेगा।

स्वतंत्रता के सिंहद्वार पर इन सोनेवालों को कह दो अभी स्वतंत्रता बहुत दूर है।

इतने सस्ते मोल पर स्वतंत्रता नहीं मिलती।

रणभेरी बज उठी है।

जागो, उठो और आगे बढ़ो।

स्वाधीनता यज्ञ की महादेवी रणचण्डी को तुम्हारा और तुम्हारे स्वजनों का खून चाहिये।

यदि हिम्मत है तो हथियार संभालो।

जीवन का मोह रखनेवाले कायर कांप रहे हैं पर बचेंगे नहीं।

हमारी आँखें उन वीरों की प्रतीक्षा कर रही हैं जिनके सामने रणचंडी नतमस्तक हो जायेगी।

देवासुर-संग्राम छिड़ा है।

देवों को अपनी सत्यनिष्ठा पर भरोसा है तो दानवों को अपनी बुद्धिमत्तापूर्ण सुव्यवस्थित कूटनीति पर।

अन्तर्ध्वनि

देखें, यह भव्य भूमि असुरों के आतंक से आतंकित हो उठती है या सुरों के आनन्द से आनन्दित।

पता नहीं, तुम्हारी क्या आकांक्षा है, जगदम्बे!

तुम्हारे दिव्य भावों को जानने के लिए हमें दिव्य चक्षु प्रदान कर।

अन्तर्ध्वनि

कोकिल,

प्रकृति ने तुम्हारी वाणी में महान् शक्ति प्रदान की है।

तुम्हारा गाना बड़ा चित्ताकर्षक है, सुरीला है, सब कुछ है किन्तु हमारे हृदय प्रफुल्लित नहीं होते।

कारण ?

बंधनों से बंधे, पराधीनता से दबे हृदयों में उमंग कहाँ ?

इन रसीले गानों को छोड़ वह तराना छेड़ जो हममें जोश भर दे।

इतना शक्तिशाली गीत गा कि सोये हुये जाग पड़ें और जागे हुये पैरों पर खड़े हो जायें।

यह समय आराम से बैठ रसभरे गीत गाने का नहीं।

निडर हो, युद्ध-गीत आरंभ कर।

पद्मदत्त

अन्तर्ध्वनि

मैं मदिरा नहीं,

जो एक बार मुँह से लगते ही सत्य से दूर भ्रामक संसार में खो दूँ ।

मैं शीतल जल हूँ,

प्यासे के प्राणों को शीतल कर शीतल बुद्धि देता हूँ ।

मैं पिंजड़े में बन्द सारिका नहीं,

जो आत्मबोध खो, तुम्हारे बोल रटा करूँ,

केवल मनो-विनोद के लिये ।

मैं तो वह पक्षी हूँ,

जो अपने संगी को उन्मुक्त आकाश की ओर संकेत करके पुकारता है,

आओ, चलो, उड़ें ।

अन्तर्ध्वनि

आओ, इस अनुपम महफिल में आओ,
तुम्हारे लिये इसके द्वार खुले हैं,
यदि शक्ति है तो आनन्द उठाओ।
'वन्देमातरम्' का मधुर संगीत स्वागत कर रहा है।
महाशक्ति के पुजारी पूजा कर रहे हैं,
जीवन-ज्योति जल रही है।
यह देखो, दीपक और पतंग का प्रणय-नृत्य।
यहाँ के कीट भी प्राणों की आहुति के खेल खेलते हैं।
मदिरा है,
पीओगे?
अवश्य पीओ, यह राष्ट्रदेव की सोमसुरा,
इसमें सुरूर ही सुरूर है,
खुमारी का नाम भी नहीं।
अब यदि शक्ति है तो अवश्य गाओगे,
सब वाद्ययंत्र बज रहे हैं,
सब की एक ही ध्वनि है,
सब गायकों का एक ही संगीत है,
छत्तीसों रागरागिनियों का एक ही सम है,
जय हिन्द

अन्तर्ध्वनि

पक्षी,

अपने पंख मुझे दे दो।

मूल्य में जो चाहो ले लो।

सदाके लिये न सही।

उधार ही दे दो।

यत्नपूर्वक इन्हें संभाल रखूंगी।

ज्यों के त्यों सौंप दूँगी।

केवल एक बार दे दो पक्षी !

जब तुम्हें वायु में पंख फैलाये उड़ते देखती हूं, मानो सागर में नाव जा रही है तो मेरे जी में एक लालसा—मीठी सी पीड़ा उत्पन्न हो जाती है। काश, मुझे पंख मिल जाते। रात्रि के अन्धकार में, तारिका के धुंधले प्रकाश का सहारा ले पंख फड़फड़ा उड़ पड़ूँ और जा पहुँचूं अपनी जन्मभूमि में, जहाँ माता का हृदय, पिता का प्रेम और स्वजनों का स्नेह मेरा स्वागत करेंगे।

पंख मुझे दे दो, पक्षी !

अन्तर्ध्वनि

कदली वृक्ष सर्वांग सुन्दर। कोमल गात, सुन्दर चिकने पत्ते और लाल-लाल पुष्प।

जन्म देता है कायर कपूर को जो बिना किसी साथी के अकेला कहीं रह ही नहीं सकता।

वायु से भी थर थर काँपनेवाला कदली वीरपुत्र कैसे उत्पन्न कर सकता है?

सुन्दरी मृगी अपने सौन्दर्य के कारण वन की शोभा है।

उसके लोचनों के लिये सुरागनायें भी लालायित रहती हैं।

अपने अनुरूप ही वह मृगशावक प्रसव करती है।

सुकुमार मृग पत्ती के खड़कते ही भाग खड़ा होता है।

मातृत्व और पितृत्व को गौरवान्वित करने के लिये केवल सौन्दर्य ही नहीं चाहिये।

अन्तर्ध्वनि

माता प्रकृति अपनी सन्तान पुष्प-पादपों का किस स्नेह और यत्न से पालन-पोषण करती है !

धरती-धात्री गोदी में लिये रहती है।

नई-नई ऋतुयें परिवर्तन के लिये आती-जाती रहती हैं।

पतझड़ पुराने परिधान ले जाती है,

वसन्त नये पहना देती है।

मेघमाला समुद्र से भर-भर लाकर पय पिलाती है।

रश्मियाँ प्रभाती के साथ प्यार करती हैं।

पवन थपकियाँ दे दे झुलाती है।

तितलियाँ खेल खिलाने आती हैं।

कोयल और मधुकर गा-गा मन बहलाते हैं।

दिन भर के थके देख चन्द्रिका परिचर्या करने लगती है।

रात्रि में सदा दीपक जग उठते हैं।

कभी साँवली और कभी फेनिल चादर ओढ़ाकर सुला देती है।

उषा नियम से जगाने आती है।

न जाने कब से यह स्नेहपूर्ण लालन-पालन चल रहा है ?

कभी शिथिलता नहीं आती,

नित नया चाव और उत्साह।

अन्तर्ध्यान

मेरी छोटी बच्ची ने मेरे गले में बाँहें डाल कर कहा ,
"माँ, मुझे भी तुम्हारे जैसी बड़ी बना दो ।"
"मेरी प्यारी चिड़िया, यह शक्ति मुझमें होती तो मैं कभी की तेरे जैसी छोटी बन गई होती ।"

अन्तर्ध्वनि

तेरी तुतली वाणी ने मुझे विमोहित कर दिया है। उसके आगे काव्य-रस भी फीका लगता है।

जब तू अपनी भोली आँखों को मेरी आँखों मे डाल कर सरल हँसी हँस देता है उस समय मैं अपने अस्तित्व को खो देती हूँ। अपने आपको भूल तेरे जैसी हो जाती हूँ।

मेरे लाल, तू सदा ऐसा ही बना रह और मैं तेरे संग क्रीड़ा किया करूँ।

अन्तर्ध्वनि

शिशु, तेरी नन्हीं सी काया में कितनी शक्ति है !

तेरी आँख में आई पानी की दो बूंदें मेरा धीरज बहा देती हैं।

तेरे धूलभरे मुखड़े को देख मैं फूली नहीं समाती हूँ।

तेरे बाल-हठ के आगे झुकना ही पड़ता है।

तेरे सरल प्रेम में अपार मोहिनी भरी हुई है, मेरे लाल !

तेरी मुस्कानों में ब्रह्मानन्द। तेरी लीलाओं में लीला-निधि श्याम।

मेरे नन्हे शिशु की नन्ही सी काया में त्रिलोक की सारी विभूतियाँ !

अन्तर्ध्वनि

तुम्हारी स्नेहमयी निर्दोष मुस्कान मेरे जीवन में मधुर रसका संचार कर देती है।

तेरे स्पर्श से मेरी हृद्‌तंत्री के तारों मे एक मीठी झंकार उत्पन्न हो जाती है।

मेरे लाल,

मेरे प्रेमोद्यान का तू वह पुष्प है जिसकी मोहक सुगंधि से मेरे जीवन में सर्वस्व सुगंधित हो उठा है।

अन्तर्ध्वनि

शशि केवल मेरे शरीर को ही शीतल करता है पर तू मेरे तप्त हृदय को भी शीतलता पहुँचाता है।

पुष्प-गन्ध केवल मेरी घ्राणेन्द्रिय को ही तृप्त करती है पर तेरी श्वास-गन्ध से मेरी आत्मा विभोर हो जाती है।

तेरे एक 'माँ' शब्द में विश्व-संगीत का सम्पूर्ण आनन्द है।

तेरे अंग-अंग में कला और हाव-भाव में कविता साकार हो जाती है।

तू विभु का वरदान नहीं, स्वयं विभु है।

अन्तर्ध्वनि

मेरी कामना थी,

मेरा अंधेरा घर जगमगा उठा ।

अपूर्व श्रृंगार किया,

सैंकड़ों दीपक जलाये,

लाखों प्रयत्न किये,

सब व्यर्थ ।

मेरे लाल,

तेरे आगमन से सारी कमनायें पूर्ण हो गईं,

अनुपम आभा से सर्वस्व आभासित हो गया है ।

अन्तर्ध्वनि

मेरा शिशु परमहंस है।

अपने आपमें हीमुग्ध रहता है,

आप ही बोलता है और आप ही हंसता है,

यह शुद्ध-बुद्ध-प्रबुद्ध महात्मा अपने ही अन्तर्तम में तल्लीन है।

इसके मोह-पाश में हम सब बंधे हुये हैं,

परिजन-पड़ोसी,

मैं तो अपना सर्वस्व निछावर कर चुकी।

इसके स्पर्श में कल्पनातीत आनन्द,

दर्शन में अपूर्व आल्हाद।

मेरी सारी कल्पनायें तुझमें मुर्त्त हो गई हैं,

मेरे लाल !

अन्तर्ध्वनि .

अमा के अंधकार में रमणीय प्रकृति के रम्यस्थल भयंकर बन गये ।

सरोवर और सरिता की रजत मुस्कान न जाने कहां विलुप्त होगई ?

कमनीय कुमुद-नयनों की कान्ति तम-जाल में खो गई ।

चारों तरफ अवसाद-कालिमा ।

समय बदला,

एक दिन प्रकृति की गोद भर गई ।

वत्स चन्द्र को पा, चन्द्रिकामयी हो उठी ।

अपने बंधु का शीतल प्रकाश पा सभी प्रकृति-परिजन जाग उठे ।

मेरी गोदी भी सूनी थी,

अमा से भी ज्यादा अंधकारमयी ।

तेरे आते ही वत्स, मेरी गोद मे शरद्पूर्णिमा का चाँद उतर आया ।

कितनी भाग्यशालिनी हूँ मैं !

प्रकृति-पुत्र चाँद से भी मेरा चँदा कितना सुन्दर और प्यारा है ।

वह रुग्ण

कभी घटता है, कभी बढ़ता है ।

मेरा चाँद सदा बढ़ता ही रहता है ।

इस तरह बढ़नेवाला मेरा चँदा एक दिन सारे संसार को प्रकाशमय कर देगा ।

अन्तर्ध्वनि

सुन्दर प्रभात था।

मैं बच्ची को लिये बागमें टहलने लगी।

वायुके झोंकों से पुष्पों से लदी टहनियाँ झूल रहीं थीं।

ओस की बूँदे मोतियों की तरह चमक रही थीं।

एक सुमन की विकसित पंखुरियों पर स्नेह से हाथ फेरते हुये बच्ची

हठात् बोल उठी,

"रो रहा है, माँ!

इसे किसने मारा ?"

अन्तर्ध्वनि

देव,

मेरी प्रार्थना स्वीकार करो।

इस अपावन मन को अपना मन्दिर बना पावन कर दो, नाथ!

आसन के लिये मैं अपना हृदय बिछा दूँगी।

स्नेह का दीपक जला दूँगी।

अपने पवित्र प्रकाश से मेरी छोटी सी कुटिया को आलोकित

कर दो, देव!

आओ,

तुम्हारी प्रतीक्षा में खड़ी हूँ।

नयन-कटोरों में मोती भर तुम्हारी आरती उतारूँगी।

आओ, सर्वस्व!

जरा मुस्करा कर मुझे निहाल कर दो।

चितचोर, तुम चंचल जो ठहरे।

तुम्हें भीतर ले जा, मैं पलकों के किंवाड़ बन्द कर लूँगी।

केवल तुम्हें ही निहारा करूँगी।

आओ, देव!

मेरी प्रार्थना स्वीकार करो।

अन्तर्ध्वनि

सन्ध्या समय कमलिनी के बन्द होने पर भँवरा अन्दर रह जाता है

रात भर बाहर नहीं निकल सकता।

यह कैद भी उसे आनन्ददायिनी प्रतीत होती है।

प्रेम की पराधीनता भी प्यारी लगती है।

अन्तर्ध्वनि

संध्या को आई देख, प्रभाकर चारों ओर बिखरी हुई सम्पत्ति को एकत्र करने लगा।

एक कृपण की भाँति अपने धन किरणों को संभाल, क्षितिज की ओर छिपा रखने के लिये चला गया।

रवि के इस व्यवहार से संध्या के मुस्कराते हुये चेहरे पर विषाद की एक काली रेखा खिंच गई

यह उदासी चन्द्रमा से बहुत समय तक न देखी गई। कलानाथ आनन्द बिखेरने की कला के निपुण कलाकार जो ठहरे।

विषादमयी संध्या चन्द्रिकामयी रजनी बनकर प्रफुल्लित हो उठी। षोड़शी श्यामा का हृदय अपार आनन्दसे लहरा उठा। सरोवर, सरिता, सागर और स्वर्गंगा सब में शुभ्र मुस्कान चमक उठी।

हृदय में आनन्द सागर छिपाये नतवदना श्यामा बोली,

"कितने ज्योतिर्मय हैं, देव!

"यह तो तुम्हारे ही विमल प्रेम का प्रकाश है, प्रिये!"

अन्तर्ध्वनि

मुख की उपमा कमल से,

आँखें भी कमल पंखुड़ियों के आकार की,

श्वास में गन्ध भी कमल सी,

हाथों की तुलना कमल से,

अन्त में चरण कमल बन गये,

सारा शरीर ही कमल सा कोमल है !

क्या कवियों को कोई और उपमा न मिली तो नायिका को कमलिनी ही बना डाला !

अन्तर्ध्वनि

मेरा हृदय अब हृदय न रह, केवल दर्पण मात्र रह गया है ।

जिसमें तेरी मूर्त्ति का ही प्रतिबिम्ब झलकता है ।

मैं इसे तुम्हें समर्पित कर चुकी,

किन्तु एक प्रार्थना स्वीकार करना ।

इसे संभाल कर रखना ।

यह इतना सुकुमार है, कहीं तुम्हारी दृष्टि से भी गिरा तो बस गिरते ही टूटा ।

अन्तर्ध्वनि

जान पड़ता है, मेरे नयनों की प्रशंसामें तुम कुछ कहना चाहते हो ।

अवश्य कहो ।

हृदय के इन दिव्य द्वारों की प्रशंसा क्यों न की जाय ?

किन्तु जरा सोच कर किसी वस्तु से इनकी तुलना करना ।

हाँ, उर्दू कवियों की भाँति तुम भी कहीं इन्हें 'छलकता हुआ पैमाना'
समझने का धोखा मत खा जाना ।

इनमें वह मादकता नहीं है और न मुझे चाहिये ही ।

मेरी तो यही कामना है कि पीड़ित को देख, सहानुभूति से दो आँसू
की बूँदें आँखोंमें छलक आवें । ये ही बूँदें मेरे हृदय के भावों का
प्रतिनिधित्व कर देंगी ।

अन्तर्ध्वनि

मेरे कवि,

हृदय-यज्ञ की इन दो विमल वन्हि-शिखाओं को कवियों की भाँति तुम भी कहीं 'नयन बाण' घोषित मत कर देना, जिनकी उपयोगिता ही हृदयों को विद्ध करने में समझ ली गई है।

मैं तो चाहती हूँ, इनमें वह ज्योति जाग्रत हो, जिसके सम्मुख पाप आँख उठाकर भी न झाँक सके।

वह ज्वाला धधकती रहे, जिसमें अन्याय और अत्याचार भस्म करने की शक्ति हो।

इसीमें नारीत्व की महत्ता और सफलता है।

अन्तर्ध्वनि

गहरे नीलवर्ण के पर्दे को उठा, शशि ने झाँक कर ज़रा मुस्करा दिया।

शुभ्र ज्योत्स्ना चारों ओर फैल गई।

चन्द्रिका के स्पर्श ने समुद्र को उद्वेलित कर दिया।

मूक निमन्त्रण पा, सागर अपनी महत्ता और मर्यादा को भूल, शशि ने मिलने की आशा से ऊपर की ओर उन्मत्त की भाँति उछलने लगा।

महासमुद्र मर्यादा-उल्लंघन कर सदियों से चाँद तक पहुँचने का असफल प्रयत्न करता आ रहा है;

अपनी शक्ति से परे देख कर भी नहीं देखता,

क्योंकि

प्रेम अन्धा होता है।

अन्तर्ध्वनि

वर्षाकाल में इन्द्र ने देखो, कामदेव का रूप बना लिया है।

विरही जन और भी व्याकुल हो उठे।

चपला इन्द्र के चारों ओर चमक चमक कर विरहिनी चपला को चिढ़ाती रहती है।

यह मेघों की गंभीर गर्जना नहीं, यह तो कन्दर्प प्राणियों के दर्प को दलित कर जयघोष कर रहा है,

कज्जलवर्ण घटा की ओट में बैठ, समुद्र की लहरों के आकार के धनुष को गगन में चढ़ा. बाणों की झड़ी लगा दी।

सुमन शरों से भी अधिक शक्तिशाली बाणों से विद्ध हो, विरही हृदय पपीहे के कातर स्वर में पुकार उठा, पीहू-पीहू।

अन्तर्ध्वनि

मुझे ये रंगीन तितलियाँ पसन्द नहीं जो एक फूल से दूसरे पर बिना किसी ध्येय के मंडराया करती हैं। नेत्र-रंजक भले ही हों पर आदर्श नहीं।

आदर्श तो वह काले रंग का भँवरा है जो केवल गाना ही नहीं गाया करता, सुन्दर पुष्पों से मधु भी ग्रहण करता है।

वह सुमन में आसक्त हो, अकर्मण्य नहीं हो जाता।

कोरा रस भोगी ही नहीं कर्मयोगी भी है।

अन्तर्ध्वनि

मैं बड़ी लोभी हूँ।

तुम्हारा स्नेह-धन पा, मैं कृतकृत्य हो गई।

जितनी अधिक तुम प्रेम-निधि प्रदान करते हो उतनी ही मेरी लालच की मात्रा बढ़ती जाती है।

कृपणता भी मुझ में है।

तुम्हारे लिखे पत्रों के अक्षरों से कोई मूल्यवान सम्पदा छिपी दिखाई पड़ती है।

मुझसे तो कागज का टुकड़ा भी नहीं फेंका जाता।

उन्हें भी संभाल कर यत्न से रख लेती हूँ।

कुछ अंशों मे चोर भी हूँ।

तुम्हारे हृदय को चुरा इस सुन्दरता से उस पर मैंने अपना अधिकार जमा लिया है कि तुम उसे लेना भी चाहो तो स्वयं तुम्हारी आत्मा ही पुकार उठेगी, 'नहीं-नहीं तुम्हारा अधिकार नहीं।

यह तो उसी की सम्पत्ति है।''

मेरे अभाव और दुर्बलताओं पर तुम मुग्ध हो इसलिये उन्हीं से मैं गौरवान्वित हूँ।

मैंने मन की गागर को स्नेह के सागर में भरने को डुबोया।

प्रेम-जल से गागर भर गई।

कौन जानता है,

गागर में सागर भरा है या सागर में गागर ?

अन्तर्ध्वनि

आज रजनी का कोई साथी नहीं।

रजनीश तो उसे नक्षत्रों के भरोसे छोड़, कहीं सुदूर परदेश में गया हुआ है।

यह तारों की सेना कज्जलवर्ण मेघों से परास्त हो, इधर उधर जा छिपी।

भयभीत रात्रि घोर अंधकार में मुँह छिपा रो रही है। आखों से जल-धारा गिर रही है।

भीगे हुये अंचल को निचोड़ने से मही का पट गीला हो गया।

अन्तर्ध्वनि

भगवान् भास्कर की अभ्यर्थना को तरुणा आदि बड़े सबेरे ही जाग पड़ते हैं।

ब्राह्ममुहूर्त्त में शीतल जल से स्नान कर, गीले तन ही प्रवीण में खड़े रहते हैं।

उन्हें शीत से कांपते देख उषा के हृदय में दया उमड़ पड़ती है।

सूर्य को अपनी शय्या से उठते न देख, उषा बादल की रजाई का कोना हटा देती है।

उषानाथ मुस्कराते हुये निकल आते हैं।

अन्तर्ध्वनि

मेरे इन नयनों में भरे पानी को आँसू मत समझो।

यह वह जलधारा है जो स्नेहलता को सींचा करती है।

इन नयनों में आई बूँदों को आँसू मत समझो।

इन अमूल्य मोतियों को गोताखोर नयनों ने गहरे खारे सागर में गोता लगा, निकाला है। इन मोतियों से पिरोई लड़ी सुहृदों के मन को बाँध देती है।

इन नयनों के जल को केवल आँसू मत समझो।

यह हृदय का शोणित है, जो वेदना की आँच से पिघल, आँखों की राह टपक रहा है।

ये आँसू नहीं।

मानवीय इच्छाओं का रक्त है जो खारा पानी बन कर बह रहा है।

अन्तर्भ्रांति

षोडश कलाओं से परिपूर्ण निशानाथ मित्र नक्षत्रों के साथ आकाश पर आसीन हो, रजनी को सुधा पिलाने लगे।

निशादेवी ने निशानाथ पर निछावर कर मोतियों को मही पर बिखेर दिया।

पृथ्वी-पुत्र पुष्पों, लताओं और पत्तियों ने उन मुक्ताओं से शृंगार कर लिया।

रजनीश का यह वैभव महत्त्वाकांक्षी दिनकर से न देखा गया।

उसने आते ही आते रश्मियों को भेज दिया उन मोतियों को लूटने के लिये।

अन्तर्ध्वनि

दीपक प्रकाश फैलाये जल रहा था। पतंग उसकी ज्योति पर मुग्ध हो गिरने लगे।

एक दो बार गिरते संभलते और फड़फड़ा कर फिर गिर पड़ते।

दीप-शिखा में जलकर मर जाते।

किसी ने कहा, "मूर्ख पतंगे अकारण ही दीपक के स्नेह में क्यों अपने प्राण गँवाते हैं।

देखो, इस दीपक को तो कुछ भी परवाह नहीं।"

दीपक बोल उठा,

"दीपक तो स्वयं कभी का जल रहा है। अब हम दोनों प्रणय-ज्योति से ज्योतिर्मय हो, पूर्ण हो रहे हैं, इस अपूर्ण जीवन को जला कर।

अन्तर्ध्वनि

कमल जल में पैदा होता है, जल ही में बढ़ता है और जल ही में पुष्पित होता है तो भी अपने आपको जल से निर्लिप्त रखता है।
कमल के सौन्दर्य पर मुग्ध हो कितने ही प्रेमी प्रणय-भिक्षा मागने आते हैं पर वह अपना प्रेम प्रदान करता है केवल भँवरे को।
वास्तव में कमल के माधुर्य और सौन्दर्य का पारखी रसिक भँवरा ही है।

अन्तर्ध्वनि

मेरे मन, अब तू मेरी सम्पत्ति नहीं रहा।

मैंने तुम्हें गिरवी रख दिया,

तुम मेरे हाथ से निकल चुके।

कोई आशा नहीं कि मैं तुम्हें छुड़ा सकूँ,

प्रेम-व्याज बढ़ चुका है।

तुम्हें खोकर भी मेरे मन, मैं प्रसन्न हूँ।

चाहती हूँ, तुम सदा के लिये उन्हीं की सम्पत्ति बन जाओ।

अन्तर्ध्वनि

लोगों को विजयी होने पर प्रसन्नता होती है,
मैं अपना हृदय हार कर ही हर्षित हूँ।
मानव-मन दान देने में अपना गौरव समझता है,
मैं प्रेम-भिक्षा पाकर ही मग्न हो गई हूँ।
मुक्ति-पथ का मुसाफिर
प्रेम-बंधन में बन्दी होकर भी सन्तुष्ट है।

अन्तर्ध्वनि

प्रकृति को पावस ऋतु ही विशेष प्रिय है। पावस के प्रेमोन्माद में प्रकृति का शृंगार अनुपम होता है।

काले बादलों का केश-विन्यास और रत्नालंकारों की तरह दामिनी की दमक।

सूर्यास्त के समय रंगीन लाल संध्या की ओढनी ओढ, रंग-रंगीला लहँगा पहन, रात्रि-मिलन की आशा से प्रफुल्लित हो उठती है। पावन पुरुष चुपके से आते हैं। घूंघट उठाते ही चन्द्रमुखी का चन्द्रानन देख मुग्ध हो जाते हैं।

सारी सृष्टि उद्वेलित हो उठती है, इस प्रेमोन्माद से।

सागर में तूफान आ जाता है।

नदियाँ गिरि-कन्दराओं से निकल व्यग्रता से बह निकलती हैं।

लजीली निर्झरिणी सोमसुरा की सुराही ले, इठलाने लगती है।

आकाश से उल्लास-धारायें छूट पड़ती हैं।

प्रकृति-पुरुष के उन्मत्त मिलन से सारी सृष्टि रोमाञ्चित हो उठती है।

अन्तर्ध्वनि

"हंस,

तुम यहाँ क्यों बैठे हो ?

यह सरोवर तो सूख चुका ।

तुम्हें तो किसी लहराते सरोवर की शोभा बढ़ानी चाहिये ।

यहाँ धूलि में बैठे कंकड़ क्यों चुग रहे हो ?"

हंस उच्छ्वास छोड़ते हुये बोला,

"प्रीति की रीति नहीं जानते तुम ।

सच्चे प्रेमी के लिये सूखा सरोवर ही मानसरोवर है और कंकड़ ही मोती ।"

अन्तर्ध्वनि

हृदय-सागर में प्रेम की नैया उतार दी है।

आओ, बैठो, यात्रा आरंभ करें।

हम दोनों को यह नैया खेनी है।

हाँ, खेने को डाँड ले लो।

धीरज का तुम लो, सन्तोष का मैं।

देखो, यात्रा लम्बी और कठिन है।

राह में आँधी और तूफान।

इनसे चतुराई से बचना अपना काम है।

प्रतिकूल वायु को देख, उत्साहहीन मत हो जाना।

विश्वास की पतवार थामे रहेंगे।

आज से हम दोनों का मार्ग भी एक होगा और लक्ष्य भी एक।

आओ, इस प्रेम-नैया में बैठ, हृदय-सागर में विहार करें।

अन्तर्ध्वनि

वन सुन्दरी शृंगार करने में तल्लीन है।

टेसुओं की लाल चुनरी ओढ़ी।

विविध पुष्पों के आभूषण धारण किये।

कोकिल मादक कण्ठ से गीत गाने लगी।

मैना की मनमोहक स्वरलहरी लहराने लगी।

मयूर ने नृत्य आरम्भ किया।

याचक मधुकर गुनगुना कर वसन्त-गुण गाने लगे।

पद्म-पराग का दान पा झूमने लगे।

लताओं ने कुंज सजा कर झूले डाले।

युगल-पक्षियों ने अपने नीड़ संवारे।

हरि पत्तियों ने अभिनन्दन किया।

तितलियों ने रंगीन परिधान पहने।

शुकदेव घोषणा पत्र सुनाने लगे।

रात्रि आई,

जुगनुओं ने दीपक जलाये।

राजसी ऐश्वर्य के कारण ही तो वसन्त को ऋतुराज कहते हैं।

अन्तर्ध्वनि

रजनी ने अपनी काली साड़ी में असंख्य तारिकायें सजा लीं ।

उनकी द्युति से उसका नीलवर्ण जगमगा उठा ।

अर्धचन्द्र को अपने हृदय-हार में गूँथ लिया ।

इस शृंगार ने डरावनी श्यामा रजनी को अनुपम सुन्दरी बना दिया ।

यौवन

अन्तर्ध्वनि

मैं चित्रकार नहीं,

तुम्हारा चित्र न जाने किस अज्ञात शक्ति से मैंने चित्रित कर लिया।

हृदय में ऐसा छिपा रखा है कि कोई देख ही नहीं सकता,

ऐसा चिपक गया है कि उतारे भी नहीं उतरता।

भग्न हृदय इस चित्रसे पूर्णेन्दु की तरह जगमगा उठा है।

एक मोहिनी क्रीड़ा से जीवन प्रतिपल प्रफुल्लित रहता है।

तुम्हारा स्मरण आते ही यह चित्र आँखों में समा जाता है और

आँखें मूँदते ही हृदय मे।

हृदय और नयनों में न जाने किस राह यह मनमोहक चित्र अठ-

खेलियाँ करता रहता है!

अन्तर्ध्वनि

तुम्हारे वियोग में उष्ण आहों ने मेरी अभिलाषाओं के पौधे को जला डाला।

उमंगों की पत्तियाँ झड़ गईं,

डंठलमात्र कलेवर रह गया।

सखे, निराश हो, मैंने उसे उखाड़कर नहीं फेंका।

आशा का जल सींचती रही।

तुम्हारे आगमन से इसमें नवजीवन आ गया।

मिलनामृत से मृत में प्राण जाग उठे,

प्रेमाङ्कुर फूट आये,

हर्ष की पत्तियाँ फैलने लगीं,

हृदय-कली खिल गई,

स्नेह-सौरभ समीर में बहने लगा,

तुम भ्रमर बन गूँजने लगे।

अन्तर्ध्वनि

"पतंगो,

इस दीपशिखा में अपने आपको क्यों जला रहे हो !

जरा मुझे भी बताओ।

यों जलने में तुम्हें क्या आनन्द आता है !"

"तुम क्या समझो !

इस आनन्द की कल्पना वही कर सकता है जिसने कभी प्रेमी पर प्राण निछावर किये हों।"

अन्तर्ध्वनि

राजा इन्द्रने कुपित हो अपनी सेना को युद्ध की आज्ञा दे दी।

भास्कर के भय से अपनी भार्या भूमि को मुक्त करने के लिये रणक्षेत्र में स्वयं भी आ डटा।

तिरंगा झंडा फहराने लगा।

सेना के दल के दल आकाश में मोर्चा बाँध; खड़े हो गये।

शस्त्रास्त्र बिजली की तरह चमकने लगे।

तोपों की गर्जना होने लगी।

इतना भयंकर हमला देख, सूर्य कहीं जा छिपा।

विजयोल्लास छा गया।

सारस कतार बाँध, उड़ने लगे।

दादुर-मोर-पपीहा-विजय-गीत गाने लगे।

झिंगुर-वीणा झंकृत हो उठी।

अभिनन्दन में दीपक जग उठे।

पृथ्वी को विरह से जली और सूर्य से सताई देख, पृथ्वीवल्लभ इन्द्र की आँखों से अश्रुधारा गिरने लगी।

प्रेमाश्रुओं से नहा कर संतप्त छाती ठण्डी हो गयी।

दिल के घाव भर आये।

हृदय-वाटिका पुष्पित हो, लहराने लगी।

इस सुखद संयोग के उपलक्ष में वसुन्धरा झोली भर भर लुटाने लगी, धन-धान्य।

अन्तर्ध्वनि

दीपक रूप एवं यौवन के मद में मत्त हो प्रेमी पतंगों को स्नेह की अवहेलना कर, जलने देता है।
सवेरे मद उतरने पर दीपक की आंख खुलती है तो अपने आपको पाता है निस्तेज, निर्धन और अकेला।
संपत्ति बच रहती है, चारों ओर लगी मुख पर काजल की कालिमा।

अन्तर्ध्वनि

सुन्दरी संध्या अपने स्वामी सूर्य के आने की प्रतीक्षा कर रही थी।

उसके रथ को अपनी ओर आते देख प्रसन्नता से गुलाबी मुख खिल पड़ा,

बड़े चाव से शृंगार किया,

सिन्दूरी रंग की साड़ी पहनी,

नये नये वस्त्राभूषण।

सूर्य कुछ ही क्षण उसके पास ठहर चला गया।

उपेक्षा देख, संध्या का मुख मलीन हो गया।

सुन्दर पोशाक उतार, तम-पट पहन लिया।

बेचारी के नेत्रों से रात भर आँसू गिरते रहे।

उषा सूर्य को साथ लिये आई तो उसने देखा,

पेड़-पत्ते सब गीले हो रहे हैं।

सौत उषा से उसका रोना भी न देखा गया।

झट दासी किरणों को भेज आँसू भी पोंछ डाले।

अन्तर्ध्वनि

मधुकर,

जान गई मैं, तू काला क्यों है।

मधुवन में कली कली के कान में गुनगुना कर कितनी ही प्रेम-प्रतिज्ञायें करता था।

भोली भाली कलियाँ सच्चा प्रेमी जान, सर्वस्व अर्पण कर देती थीं।

इस तरह एक एक कली को प्रेम-पाश में बांध, रस पी, उड़ जाता था, सबको छल कर।

इसी छल के कारण मुँह काला कर मधुवन मे घुमाया गया।

वही कालिख आज तक लगी है।

अन्तर्ध्वनि

मेरा यह जीवन एक वीणा की भाँति है,

जिसमें भावनाओं के तार कसे हुये हैं।

नवरस से युक्त राग-रागिनियाँ इसमें समाविष्ट हैं।

जब मेरा मित्र एक चतुर गायक के रुप में अपने स्नेह-स्पर्श से इन तारों को झनझना देता है तो वीणा में एक मृदु ध्वनि उत्पन्न हो जाती है। गायक मेरी जीवन-वीणा के स्वर में स्वर मिला, हृदय की सारी अनुभूति और प्रेम को गीत की भाँति गाने लगता है, उस समय दो पृथक्-पृथक् धड़कते हुए हृदयों की ध्वनि के एकीकरण से वातावरण अद्वैत संगीत की संमोहक स्वरलहरी से आल्हादित हो उठता है।

चारों ओर प्रेम का साम्राज्य दिखाई देता है। जहाँ प्रेम शासन भी करता है और शासित भी है।

अन्तर्ध्वनि

"पवन, तुझ में शीतलता कहाँ से आई ?

"मैं हिमाच्छादित हिमालय से मिलने गया ;

उसने सखा समझ हृदय से लगा लिया। उस स्नेह-स्पर्श ने मुझे शीतल कर दिया।"

"मन्द कैसे हो ?"

"जब मैं आकाश से उतर कर पृथ्वी पर आता हूँ तो अपनी माताओं के संग क्रीड़ा करते बालकों की मीठी मीठी बातों के मधुर रस को चखने के लिये अपनी गति मन्द कर देता हूँ।"

"और सुगन्धित भी तो होना ?"

"हाँ-हाँ सुगन्धित क्यों हूँ सुनो। जब मैं सैर करता स्वर्ग में चला जाता हूँ तो वहाँ अप्सराएँ मुझे आ घेरती हैं। उनके अंगों से निकली गंध मुझमें समा जाती है। जब लौटने लगता हूँ तो कल्प-वृक्ष की कलियों का हार मेरे गले में डाल देती हैं।

यों मैं शीतल, मन्द और सुगन्धित पवन हो गया हूँ।"

अन्तर्ध्वनि

ऋतुयें छ हैं ।

इनमें प्राधान्य वसन्त को दिया गया,

ऋतुराज बना कर ।

जीवन देनेवाली वर्षा से भी ऊँचा स्थान ।

वसन्त ने अपने पुष्प भेंट कर दिग्विजयी अनंग से मित्रता स्थापित की ।

पुष्प-लताओं पर मोहित देख,

उसे पुष्पधन्वा का खिताब दे दिया ।

कामरूप ने सबको वसन्त के रंग में रंग दिया ।

कोयल को आम्ररस पिला पिला सखी बना लिया, जो काव्यमयी सरस भाषा और मादक स्वर में इसके गीत गाने लगी ।

मनमें अनंग का उन्माद और बाहर कोयल के मधुर काव्य संगीत का समा बंध गया ।

किसकी सामर्थ्य जो मुग्ध न होता ?

सब एक स्वर से बोल उठे,

मधुमास ही ऋतुराज है ।

अन्तर्ध्वनि

बुलबुल मीठी बोलती है।

उसकी चहक कानों को तृप्त करती है।

इस सेवा का उसे पुरस्कार दिया जाता है, पिंजड़े में बन्दी बना कर।

मोती को स्वच्छ, सुडौल और आबदार देख, लोग रीझ जाते हैं।

इसके सौंदर्य को सम्मानित किया जाता है, कलेजे में आरपार छेदकर।

सुमन की कोमलता और सुगंध दर्शक को उसका प्रेमी बना देती है।

इस प्रेम का परिचय दिया जाता है, उसे जला, इत्र खींच कर।

अन्तर्ध्वनि

भला मैंने ऐसा क्या अपराध किया जो तुमने मुझे चन्द्रमुखी कह कर पुकारा ।

मेरे मुख से उसकी उपमा !

अकलंक से सकलंक की उपमा !

कविगण भावुकता के बहाव में बह गये ।

नारीत्व में सतीत्व ही महान् सौंदर्य है ।

सकलंक सौंदर्य मे नारीत्व लज्जित होता है ।

मैं नारी हूँ,

मुझमें नारीत्व है,

यही महान् सौन्दर्य है,

अनुपमेय ।

अन्तर्ध्वनि

कोकिले, मुग्ध श्रोताओं से प्रशंसा पा, मादक स्वर में कूक कूक
कर नाच रही हो।

जानती हो ?

ये पारखी नहीं।

तुम्हारे स्वर-मोह के फँसे नादान हैं।

इनकी वाह वाह में मत भूल।

ये प्रेमी नहीं,

इन्द्रियों की तृप्ति के भूखे हैं,

रस भोगी हैं।

कोकिले, इनमें प्रेम नहीं वासना है।

अन्तर्ध्वनि

भँवरा गूँज गूँज कर गाने गाता है ।

कलियाँ मस्त हो झूमने लगती हैं ।

भँवरा सब का रस पी, उड़ जाता है ।

कलियाँ बिलखती हैं,

रसलोभी प्रणय-प्रवंचन का जाल बिछा,

प्रपंच दिखा,

लूट ले गया ।

भ्रमर का ही क्या दोष ?

प्रेम-पराग और सौन्दर्य के गीत सुन,

चंचल कलियाँ पल भरमें आत्म-समर्पण कर देती हैं ।

एक के बाद एक सभी अपना हृदय-धन खो बैठती हैं ।

नारीत्व का आत्मसमर्पण देख,

पुरुषत्व के बाँध टूट जाते हैं ।

कंचनमुखी चम्पे की कली को देखो,

कितना सौंदर्य और कैसा पराग !

सुगन्धि की लपटें निकल रही हैं किन्तु भ्रमर निकट जाने का भी साहस नहीं करता ।

जानता है, चम्पा के उज्ज्वल मन पर उसका रंग नहीं चढ़ेगा ।

संयम में शक्ति होती है, और दुर्बलता में अविवेक ।

अन्तर्ध्वनि

यदि मैं एक नदी होती तो इस तरह धीरे-धीरे पत्थरों को कंकड़ और कंकड़ों को रेत बनाती हुई चुपचाप जा किसी बड़ी नदी में मिल अपने अस्तित्व को थोड़े ही खो देती।

मैं नदी होती तो अपने मार्ग को मरुस्थल की ओर बदल डालती। वहाँ के निर्जल टीलों को अपना पय पिला, शस्य श्यामल बनाती रहती।

अन्तर्ध्वनि

पतझड़ को देख घबराता क्यों है ?

यह तो वसन्त-दूत है ।

सन्देश लेकर आया है, ऋतुराज वसन्त का ।

जीर्ण वस्त्र ले जायेगा ।

इसका स्वागत कर ।

नव-जीवन आनेवाला है ।

मनमें नई उमंगें आयेंगी,

शरीर नवनव वस्त्राभूषणों से सज जायेगा,

पुरातन नवीन हो उठेगा ।

अन्तर्ध्वनि

प्रभाकर, हमें तुम्हारे उस प्रखर तेज की आवश्यकता नहीं जो हरे भरे विश्व को जला डालता है।

हमें तो वही दिव्य कान्ति चाहिये जो नवाङ्कुरित पौधों का पोषण करती है और प्रकृति की फल-फूलों से पूजा।

प्रभंजन, हमें तुम्हारी प्रलयंकर गति नहीं चाहिये, जो प्रकृति-पुत्रों को भयभीत और निष्प्राण कर देती है,

रम्य वनों को धुंधला और पावन जल को गदला।

हमें तो वही मन्थर गति चाहिये जो प्राणों को सुरभित कर नई उमगें ला दे और जीवन-जल में लहरें डाल, उसे और भी सुन्दर बना दे।

अन्तर्ध्वनि

आशा, तू जीवन है,

तेरा पल्ला पकड़ कर ही प्राणी जीवन-पथ में आगे पाँव बढ़ाता है,

तुझ से रहित जीवन कोई जीवन नहीं,

तेरी कल्पना तक में मिठास है,

दुःख-सागर में डूबते जन के लिये तू जीवन-नैया है।

सुख-स्वप्नों की तूही चितेरी है,

मुर्दों में जान तू ही डाल सकती है,

जिन्दों मे जोश तू ही ला सकती है,

जादूगरनी, तेरे जादू निराले हैं।

अन्तर्ध्वनि

मयूर, यों उखाड़ कर इस निर्ममता से हमें क्यों डाल रहा है ?

तेरी शोभा इन पंखों ने ही है।

देख हमारे बिना तू किसी को लुभा न सकेगा ।

तेरा नृत्य हमारी रंग-बिरंगी सुषमा से ही ललित प्रतीत होता है ।

तुझसे अलग होकर कदाचित् हम तो घनश्याम के मुकुट की शोभा

बन जायेंगे पर तू श्याम घन को देख कर भी संतप्त ही रहेगा ।

अन्तर्ध्वनि

हमारा अपना हृदय ही न्यायालय है।

न्यायाधीश के आसन पर बुद्धि विराजमान रहती है।

वासनायें और विवेक, वादी और प्रतिवादी के रूप में झगडा करते हैं।

इनकी सुनाई बुद्धि के आगे होती है।

प्रतिवादी के पक्ष में कर्त्तव्य गवाही देता है,

उधर वादी के वकील स्वार्थ की दलीलें भी जोरदार हैं।

इस न्यायाधीश का फैसला ही अपना अपना जीवन-मार्ग है।

अन्तर्ध्वनि

मानव-जाति मन से बंधनों में बंधी हुई है।

नैतिक, सामाजिक और धार्मिक आदि अनेक सुदृढ बंधन हैं।

विहग समुदाय सदा से स्वच्छन्द है।

बन्धनों से दूर स्वतंत्र विहार करने वाला।

शुक और मैना दुर्भाग्यवश मानव-वाणी बोलने लगे।

उन्हें भी बन्दी बना लिया गया।

अन्तर्ध्वनि

नव पल्लवित पौधे ने झूमते हुये कहा,

"यह भ्रम है कि माली पौधे की रक्षा करता है।

माली क्या करेगा ?

जीवन देने वाली तो सावन की ये अमृतमयी बूंदें हैं।

यह काली घटा मोती बरसाती आती है।

हमें चाहिये ही क्या ?"

माली ने गंभीर स्वरमें कहा, "तुम्हारी देह अब हरे चिकने पत्तों से ढक गई है, इसलिये सावन दिखाई दे रहा है। तुम्हारी जड़ को धरती के हृदय में स्थान मिल गया न! नादान, जब तुम नन्हे थे, मैंने ही सहारा दे खड़ा किया था। याद नहीं निदाघ की भीषण ज्वाला ? जब मुरझा कर लीला समाप्त करने वाले थे, मैंने ही जल देकर जीवन-दान दिया था, तुम्हें। आज सावन की झड़ी देख भूल गये वे दिन ?"

अन्तर्ध्वनि

विलासिता या इन्द्रियलोलुपता मानव-हृदय की महान् दुर्बलता है। यही दुर्बलता उत्थान के मार्ग-द्वार बन्द कर आत्मबल को मूर्छित कर देती है।

विलासी राजा इन्द्र ही को लो। वह तो सुरों का भी स्वामी है। अपार ऐश्वर्यशाली। राजसत्ता का पार नहीं। वज्र जैसा शस्त्र। इतना होने पर भी कितना भीरु है सुरराज। सदा सशंकित रहता है। वीत-तपस्वी को तप करते देख, उसके हृदय और मस्तिष्क को यही भय उद्वेलित कर देता है कि यह इन्द्रासन का इच्छुक है। भयभीत देवराज अपनी प्रतिष्ठा और उच्चासन के गौरव को किनारे रख, अनंग और अप्सराओं से गिड़गिड़ा कर विनती करता है, सत्य की खोज में तल्लीन तपस्वी के तप को छल से भ्रष्ट करने के लिये।

विलास-सागर में पुरुषार्थ के डूब जाने पर कर्तव्य-ज्ञान पर जंग चढ़ जाता है। बुद्धि गोते खाने लगती है। विचारों की पवित्रता संकट में पड़ जाती है।

कविता-कामिनी का निवास-स्थान हृदय है।

वह केवल बुद्धि ही का अंचल पकड़े पकड़े तर्क-वितर्क आदि साथियों के उलझन में डालने वाले खेल न खेल कर कल्पना और भावों के आगन में क्रीड़ा किया करती है।

कविता मालियों के हाथ से धूल में दबा दबा पानी पिला कर काटी छाटी गई दूर्वा नहीं। वह तो वर्षाऋतु की वह दूब है जो स्वतः फूट निकलती है।

अन्तर्ध्वनि

मानव-मस्तिष्क के एक कोने में कल्पना घोंसला बना, रहती है। यह कल्पना-पक्षी उड़ानें बड़ी दूर दूर की लेता है। जब यह पंख फैला उड़ पड़ता है तो कोई भी स्थान इसके लिये अगम्य नहीं। स्थूल तो स्थूल सूक्ष्म में भी प्रवेश कर जाता है। यह अपने घोंसले को लौटते हुए कुछ दाने चुनकर जो ले आता है, उन्हें मानव-जाति ने बो दिया ताड़-पत्रों पर, पत्थर और कागजों पर।

उन्हीं बीजों से यह साहित्य-वाटिका उत्पन्न हुई है।

अन्तर्ध्वनि

लेखक प्रकृति ने एक विस्मयजनक पुस्तक लिखी। सागर की स्याही मे पृथ्वी का सहारा ले, दिवा-रात्रि के पत्रों पर।
वर्षा-कालीन सुन्दर संध्या, तारों से जगमगाता नभ और मनोहर उषा के रंग-बिरंगे चित्रों से सजा कर रख दी, मानव जाति के आगे अध्ययन के लिये।

अन्तर्ध्वनि

कवि ने क्या ही कल्पनापूर्ण कृति की रचना की है।

किसी स्थूल पदार्थ का सहारा लिये बिना ही चित्र चित्रित कर दिया।

मानस पट को कागज बना चित्रांकन प्रारंभ किया।

शब्दों की तूलिका को भावों के रंगों में डुबो डुबो इस कुशलता से

हाथ चलाया कि कल्पना सजीव हो, चित्र बन गई।

काव्य-मर्मज्ञ मुग्ध हो, मानस चक्षुओं से इन चित्रों को निहारा करते हैं।

अन्तर्ध्वनि

सूर्य दिवस-साम्राज्य का सम्राट् है ।

वह अपना पतन होते देख, अस्ताचल की कन्दराओं में जा छिपता है ।

श्रीहीन होकर प्रजाजनों के सम्मुख नहीं आता ।

भाग्योदय होने पर ही पुनः रंगमंच पर पदार्पण करता है ।

चन्द्रमा पदच्युत होकर भी निर्लज्ज मनुष्य की भाँति अपना पीला और निस्तेज मुख दिखलाता रहता है ।

और तो और इस अवस्था में उपासक चकोर भी उसकी ओर नहीं देखता ।

वेयासी

अन्तर्ध्वनि

व्यथित हृदय ने कहा, "मैं तंग आ गया। सामाजिक रूढ़ियों ने हृदय में अशान्ति की आग लगा दी। कोई मुझे शान्ति दे सकता है?"

वारुणी बोली, "मेरा सेवन कर। जग मुझे अपने ओठों से लगा। मेरा चुम्बन तेरी अशान्ति को दूर भगा देगा।"

सुरा का आग्रह स्वीकार कर लिया। अब उसका नारा था,

'गम गलत करने को मय पीता हूँ मैं।"

कुछ दिनों बाद देखा, सुरा-पात्र टुकड़े हुए पड़ा था। एक कोने में पड़ा प्याला सिसक रहा था।

बुद्धि ने पूछा, "मित्र हृदय, इसे क्यों तोड़ डाला?"

हृदय ने ठंडी आह भरकर उत्तर दिया, 'यह मुझे नष्ट करने जा रही थी अशान्ति की आग को तीव्र बना कर। मैंने इसे नष्ट कर दिया, मिट्टी में मिला कर।"

अन्तर्ध्वनि

मृगेन्द्र,

तुम वनके राजा एकच्छत्र शासक। किसकी शक्ति जो तुम्हारा सामना करे !

तुम्हारा पराक्रम और साहस अपरिमेय हैं।

वनराज,

यह पराक्रम, अपनी दीन हीन प्रजा, मृग और शशा पर दिखा क्यों अभिमान करते हो ?

इसमें तुम्हारी शोभा नहीं।

बाहुबल दिखाने को तो मदझरते मतंग ही उपयुक्त हैं, जो निरंकुश हो निर्बल लता-द्रुमों को नष्ट कर डालते हैं।

अन्तर्ध्वनि

मैंने पूछा, "माली, इन घने पौधों को क्यों उखाड़ डाला !"

"ये एक ही स्थान पर अधिक जमा हो गये थे।"

"इस फैले हुये वृक्ष की कलम क्यों कर डाली ?"

"अपने पासवाले छोटे २ पौधों को वह पनपने नहीं देता था। इधर देखिये इन मुरझाये हुये पौधों को। अब इनको स्थान दे, खड़ा कर दिया है। पानी दे दिया है। धूप और हवा पा, बढ़ने लग जायेंगे।"

मैंने देखा, "माली अपने साम्राज्य में राजनीति से ही नहीं कूटनीति से भी काम लेता है।

जुटकर संगठन करनेवालों को उखाड़ कर फेंक देता है।

किसी के भी व्यक्तित्व को विशेष प्रभावशाली नहीं बनने देता।

बढ़े हुओं को, दुर्बलों के हितचिन्तन की घोषणा कर, गिराने का प्रयत्न करता है।

शक्ति-सन्तुलन का सदा खयाल रखता है।

उसकी आन्तरिक आकांक्षा रहती है,

स्वेच्छानुसार उद्यान पर शासन करना,

शासितों को शक्तिहीन बना कर।

वास्तव में साम्राज्य-निर्माण और सञ्चालन की बाहरी नीति राज नीति है और अन्तरात्मा विधायक कूटनीति।

अन्तर्ध्वनि

महासागर,

तुम महान् हो ।

तुम्हारी गहराई की थाह लेना कठिन है ।

तुम्हारे कोष में असंख्य मोती भरे पडे हैं ।

तुम महान दानी हो ।

आकाश-वासी मेघों को तुम्हीं जल-दान देते हो ।

मैं भी प्यासा हूँ, जलनिधे ! एक अंजली जल देकर भी शान्त नहीं करते ?

मुझे तो उस नन्हे कूप से ही याचना करनी होगी ।

मेरे लिये तो वही समुद्र है ।

अन्तर्ध्वनि

आम्र वृक्ष से मैंने प्रार्थना की, "कृपया एक आम देकर अनुगृहीत कीजिये।"

उसने आँख उठाकर भी मेरी तरफ नहीं देखा।

मैंने फिर निवेदन किया, "कल्पतरु, मैं भूख से व्याकुल हूँ, दया कीजिये।"

तरु ने अवज्ञा की हँसी हँस, मुँह फेर लिया।

मैं निराश हो वहीं बैठ गया।

एक पथिक आया और पत्थर उठा कर वृक्ष पर मारा।

टप से एक मीठा फल नीचे आ गिरा।

मैं आँखों से दया-भिक्षा माँगता वहीं बैठा रहा।

इतने में दो मनुष्य आये।

तरु के विशाल सीने पर पाँव रख कर ऊपर चढ़ गये।

घमण्ड से ऊँचा उठा हुआ उसका सिर नीचे झुक गया।

मेरी एक फल की प्रार्थना को ठुकराने वाले वृक्ष ने अपना [illegible] उनके हाथों सौंप दिया।

अब मैं समझा हृदयहीनों के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये।

अन्तर्ध्वनि

इच्छागामी पुष्पक विमान में मैं सैर करता हूँ।

वरुण देवता मेरे स्नानागार में पानी भरते हैं।

पवन मुझे पंखा झलता है।

ब्रह्मा चक्की मे आटा पीसते हैं।

अग्निदेव स्वयं भोजन बनाते हैं।

गगन निवासिनी बिजली मेरे कमरे को आलोकित करती है।

गंधर्व और देवगण मुझे आकाशवाणी द्वारा संगीत और विश्व समाचार सुनाते हैं।

विज्ञान से सारे देवताओं को जीत लिया, अब मै अपने आपको रावण से किस प्रकार कम समझूँ ?

अन्तर्ध्वनि

यह विश्व एक विस्तृत विद्यालय है और प्रकृति देवी अध्यापिका।

एक हाथ में ताड़ना-दण्ड लिये एवं दूसरे में वरदान,

सदियों से अपना अध्यापन कार्य कर रही है।

छात्र हैं, संसार के स्थावर-जंगम।

छात्रवृन्द कभी हँसते, कभी रोते, मुस्कराते और [illegible] से पाठ पढ़ते हैं।

असंख्य शिष्य अनादिकाल से अध्ययन में जुटे हुए हैं और अध्यापिका पूर्ण प्रयत्न के साथ अध्यापन में तल्लीन है पर कोई भी शिष्य अभी तक इस पुस्तक को सर्वांग नहीं पढ़ सका।

अन्तर्ध्वनि

बूढ़े ब्रह्मा में बाल-चापल्य अभीतक है ।

बच्चों के से खेल खेला करता है ।

बालकों की भाति ही मिट्टी के खिलौने बनाता रहता है ।

बना बना कर बिगाड़ना और बिगाड़ बिगाड कर बनाना, बस यही खेल युगों से खेलता आ रहा है ।

अन्तर्ध्वनि

निद्रा जलाशय तो स्वप्न लहरें हैं.

निद्रा वर्षा की काली घटा तो स्वप्न दामिनी है.

निद्रा शान्त उपवन तो स्वप्न गुलाब है.

जिसमें सुगंध भी है और काँटे भी।

निद्रा नीलाम्बर है, स्वप्न तारे.

निद्रा मृत्यु है, स्वप्न जीवन की कड़ी।

निद्रा अचेतन है और स्वप्न जागृति।

अन्तर्ध्वनि

हमारा जीवन तीन मंजिलों से होकर गुजरता है। ये तीनों मंजिलें एक के पीछे दूसरी इस तरह आती हैं जैसे प्रथम स्टेशन के पश्चात् द्वितीय। ये मंजिलें हैं—भूत, भविष्य और वर्तमान।

भूतकाल, इस काल के भूत होते ही इसका उतना ही मूल्य रह जाता है जितना मृत व्यक्ति का। केवल स्मृति मात्र।

भविष्य, यह एक स्वप्न है। एक प्रकार की कल्पना, सदा कोहरे से ढकी हुई।

वर्तमान, यह प्रत्यक्ष वर्तमान सदा एक पहेली बना आगे रहता है। जहाँ एक सुलझी, दूसरी सामने रख देता है।

अन्तर्ध्वनि

विश्वकर्मा ने इस विशाल विश्व-वाटिका की रचना अद्भुत् कौशल से की है। सुख-सुमनों को पाने के लिये काँटेदार झाड़ियों में हाथ डालना होता है।

वसन्त के नवजीवन के साथ ही पतझड़ लगी रहती है। जहाँ बुल्बुल की स्वतंत्र चहक है, वहाँ सैयाद का पराधीनता का फन्दा भी है। कितनी ही बिना खिली कलियाँ, उत्कंठित हृदय लिये आशाभरी दृष्टि से भावी जीवन की ओर झाँक रही हैं। कितने ही सुमन, लोभी मित्र मधुपों को पराग लुटाते और समीर को सुगंधित करते, वाटिका की शोभा बढ़ा रहे हैं। कितने ही पुष्प पद-भ्रष्ट हो गिर कर, रौंदे जाकर पैरों तले मिट्टी में मिल रहे हैं।

अन्तर्ध्वनि
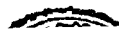
उषा अपनी अरुण आँखें खोल रही थी। उपवन के सुन्दर प्रांगण में पूर्ण विकसित मैंने गुलाब का एक पुष्प देखा।

जी में आया, इसे तोड़ अपने आराध्य देव को भेंट करूँ। हाथ बढ़ाया।

अरे यह क्या!

मैंने देखा, उस सुमन के गुलाबी कपोलों पर अश्रु-कण चमक रहे थे।

पूछा, "पुष्पराज, रोते क्यों हो? तुम्हारी सौरभ तो वायु में भी जीवन-संचार कर रही है।"

एक सुवासित निःश्वास के साथ उत्तर मिला, "और जानते हो, मेरा जीवन अब कितने क्षणों का है!"

मेरा हाथ बढ़ा का बढ़ा रह गया, तोड़ न सकी।

अन्तर्ध्वनि

परम पिता परमात्मा ने पंचतत्वों से एक पिंजडा बना, उसमें इन्द्रिय-
रूपी नौ द्वार रख, एक प्राण पक्षी को बैठा दिया।

जिस क्षण अवधि समाप्त हुई, वह प्राण-पखेरू किसी एक द्वार से फुर
उड़ जायेगा।

लाख प्रयत्न करके भी कोई उसे रोक नहीं सकता।

आश्चर्य तो उसके रहने पर है न कि उड़ जाने पर।

अन्तर्ध्वनि

चरणों से धूलि सदा रौंदी जाती है फिर भी धूलि का सदा अस्तित्व बना रहता है,

किन्तु रौंदने वाले चरणों और चरणधारी शरीरों का कहीं पता नहीं,

एक दिन इसी धूलि में मिल जाते हैं।

नीले नभ में छोटी छोटी तारिकायें टिमटिमाती हैं,

फैलती हुई प्रभातरश्मि को देख कहीं जा छिपती हैं,

रात होते ही फिर नभ के झरोखे से झांकने लगती हैं,

किन्तु मैं ?

मैं तो एक बार जाकर फिर झाकने न आऊँगी,

मेरे लिखे काव्य यहीं रहेंगे और मैं एक स्वप्न हो जाऊँगी।

अन्तर्ध्वनि

मैं भावी जीवन का कार्य-क्रम बना रही थी.

जोर की आवाज सुन, झरोखे से झांका.

एक लाश लिये जनसमुदाय श्मशान की ओर जा रहा है ।

मैं विचार में पड़ गई,

क्या मेरे कार्यक्रम का भी यही अन्त होगा ?

अन्तर्ध्वनि

पथिक ने पूछा,

"यह मार्ग किधर जाता है ?"

मार्ग बोल उठा,

"न मैं कहीं आता हूँ, न कहीं जाता हूँ। असंख्य प्राणी आ आ कर चले गये, मैं यहीं का यहीं हूँ।"

श्री रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत

पुरस्कार

१०००)

राजस्थानी संस्कृति, साहित्य और भाषा के सम्बन्ध में लिखित सर्वोत्कृष्ट पुस्तक पर यह पुरस्कार दिया जायेगा। विशेष जानकारी के लिए निम्नाङ्कित पते पर पत्र-व्यवहार करें :

सम्पादक,
श्री रानी लक्ष्मीकुमारी चूडावत ग्रंथमाला,
४७, मुक्तारामबाबू स्ट्रीट,
कलकत्ता

प्राप्तिस्थान

जयदुर्ग प्रकाशन,
जयपुर.

४७, मुक्तारामबाबू स्ट्रीट,
कलकत्ता.

नवयुग ग्रन्थ कुटीर,
बीकानेर. फर्रुखाबाद.